International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(4): 20-27

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(4): 20-27
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 07-05-2018
Accepted: 08-06-2018

रमेश चन्द्र नैलवाल
शोधच्छात्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Correspondence
रमेश चन्द्र नैलवाल
शोधच्छात्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

कश्मीरी शैव-भक्तिसाहित्य का कश्मीरी सूफीभक्ति पर प्रभाव

रमेश चन्द्र नैलवाल

प्रस्तावना

प्रायः किसी भी दर्शन के साथ उसके सम्बन्धित अनेकों तत्त्वों का उद्भव प्राप्त होता है, उसी प्रकार काश्मीरक्षेत्र में शैवदर्शन के साथ कश्मीरी भक्तिपरम्परा का भी उद्भव देखा जा सकता है, फलस्वरूप अनेक स्तोत्र ग्रन्थ एवं भक्ति से परिपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई । इस भक्ति परम्परा का उत्स शैवदर्शन के सापेक्ष होने से यह शैव दर्शन के सिद्धान्तों एवं तात्त्विक विमर्श से अछूती न रही । यद्यपि धार्मिक परिप्रेक्ष्य में काश्मीर क्षेत्र में अनेकों सम्प्रदायों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है, तथापि शैव दर्शन के प्राधान्यता के कारण शैव भक्ति साहित्य का वर्चस्व ज्ञात होता है । प्रारम्भिक भक्तिसाहित्य में भारतवर्ष के अन्य क्षेत्रों के समान संस्कृत भाषा में निबद्ध स्तोत्र-विधा एवं अन्य शास्त्र ग्रन्थों में प्रसङ्गानुरूप भक्ति का उल्लेख मिलता है, तथापि शनैःशनैः इसका प्रभाव लोकभाषा एवं एवं अन्य धार्मिक सम्प्रदायों पर भी पडता है । विशेषतः चतुर्दश शताब्दी में प्राप्त में सूफी भक्तिसाहित्य में इसका पूर्णतः प्रभावः प्राप्त होता है । काश्मीर स्तोत्र की एक दीर्घ परम्परा है, जिसमें स्तुति की प्राधान्यता एवं भक्तिरस की पूर्णता है ।

स्तूयतेऽनेनेति स्तोत्रं' इस व्युत्पत्तिमूलक 'स्तु' धातु से स्तोत्र शब्द निष्पन्न होता है । 'वाचस्पत्यम्' नामक कोश ग्रन्थ में 'स्तवे गुणकर्मादिभिः प्रशंसने' आदि अर्थों का प्रतिपादन हुए द्रव्य, गुण, कर्मविधि और अभिजन चार भेदों का कथन किया है[1]। इस प्रकार द्रव्यस्तोत्र में प्रशस्य या स्तुत्य व्यक्ति के द्रव्य की प्रशंसा, कर्मस्तोत्र में कर्मप्रशंसा, विधिस्तोत्र विधिपरक (प्रेरणादायक) तथा अभिजनस्तोत्र व्यक्ति के कुल, स्थान विशेष की प्रशंसा में निबद्ध होते हैं । 'हलायुधकोशः' में भी 'स्तुयतेऽनेनेति' इस व्युत्पत्ति से स्तोत्र शब्द के अर्थवाद, स्तुति, नुति, स्तव और श्लाघा वर्णन इत्यादि अर्थ कहे गये हैं[2]। अतः स्तोत्र भक्ति काव्यमयी कृति का नाम है, जिसके द्वारा व्यक्ति ईश्वर या श्रद्धेय व्यक्ति की स्तुति करता है । संस्कृत साहित्य में जो भगवद्भक्तिपूर्ण विशाल साहित्य दृष्टिगोचर होता है, उसे स्तोत्र साहित्य नाम से अभिहित किया जाता है । इस साहित्य का विभिन्न देवताओं की स्तुति में स्तोत्रकारों की भावाभिव्यक्ति, आत्मनिवेदन और दीनता का प्रस्फुटीकरण जनमानस को

[1] द्रव्यं कर्मस्तोत्रं विधिस्तोत्रं तथैव च । तथैवाभिजनस्तोत्रं स्तोत्रमेतच्चातुविध्यम् ॥ वाचस्पत्यम् भाग ६, पृ०- ५३४२

[2] हलायुध कोश पृ०- ७२६

आकर्षित करता है । जिस साहित्य को न्यून समझकर उपेक्षित कर दिया गया, वही साहित्य कोमल साहित्य की अभिव्यञ्जना में अपना महत्त्व रखता है, जिसका वैशिष्ट्य भारतीय धर्म की आस्तिकता, भक्ति-प्रवणता और आर्य संस्कृति पर आधारित है । कश्मीरी स्तोत्रों में यद्यपि प्रायः अनेकों देवी-देवताओं की स्तुति की गई है, तथापि सम्पूर्ण कश्मीर क्षेत्र शैवदर्शन से प्रभावित होने के कारण शिव को ही प्रमुखतः स्थान प्राप्त हुआ है, तथा शिव एवं शक्ति में अभेद होने के कारण शक्ति की स्तुति भी प्राप्त होती है, जिनमें देवीशतकम्, परास्तुति आदि प्रमुख है ।

भारतीय ज्ञान परम्परा में काशी एवं कश्मीर का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है । कश्मीर ने प्राचीन काल से केवल केसर एवं कुंकुम से ही सम्पूर्ण भारत को सुगन्धित नही किया, अपितु समय-समय पर उत्पलदेव, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, भट्टनारायण, लोष्टककवि, जगद्धरभट्ट, अवतारकवि, साहिब्कौल, क्षेमराज इत्यादि कश्मीरी स्तोत्रकारों एवं लल्लेश्वरी, नन्द ऋषि इत्यादि सूफी कवियों द्वारा भारतीय मेधा की क्षितिज में श्रीवृद्धि की है ।

कश्मीर शैव स्तोत्रों में प्राप्त भक्ति

कश्मीर की प्रमुख दार्शनिक मान्यता शिवाद्वैतवाद है । इस मान्यता के अनुसार सम्पूर्ण जगत् शिवमय है । अतः जीव भी वस्तुतः शिव ही है, किन्तु वह जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है । तथा अपनी देह, मन इत्यादि को आत्मा मान बैठा है । शैवदर्शन का सम्पूर्ण उपदेश जीव को उसका वास्तविक स्वरूपाख्यान कराना है कि जीव शिव के अतिरिक्त और कुछ नही है । इसी के साथ दर्शन उस साधना का भी उपदेश देता है, जिससे जीव का शिव में समावेश हो जाता है ।

शैव दर्शन में मोक्ष प्राप्ति या स्व स्वरूप ज्ञान के लिए अन्य साधनों के अतिरिक्त भक्ति भी एक साधन रूप में स्वीकृत है। भक्ति को सर्वोत्कृष्ट[3] तथा इतर सभी उपायों को अपने में समावेश करने करने वाली कहा गया है । तथा वह ध्यानादि सभी उपायों से सुगम मार्ग है[4]। भक्ति तमोवेश के लिए दीपशिखा तुल्य है । परमशिव में समावेश कराने हेतु वह पूर्णतः समर्थ है । अतः स्वरूप प्राप्ति हेतु भक्तिशाली होना नितान्त आवश्यक है, क्यों कि किसी भी जीव को भक्त बनाना और न बनाना, तथा किसी को भक्ति का पात्र बनाना या न बनाना यह सब परमेश्वर के अनुग्रह में केन्द्रित है[5]। विश्व में प्रत्येक मनुष्य अपनी आत्मा से प्रेम करता है । आत्मा ही शिवरूप है, अतः जब साधक को भक्ति एवं प्रेम से भगवद्भक्ति के साथ एकाकार रूप परमानुभूति होती है, तो उसे भगवत्समावेश की प्राप्ति होती है[6]। अतः जिस समय भक्तियुक्त साधक परमेश्वर का साक्षात्कार को प्राप्त कर लेता है, उसी समय उसके चित्त का प्रथम अङुरण उत्पन्न होता है, शैव दर्शनानुसार वही 'अपरावस्था' कहलाती है । जब क्रमशः यही भक्ति अपने चरमावस्था अथवा चरमावस्था में पूर्णता से युक्त होती है तो वह 'परावस्था' कही जाती है । शैवशास्त्रानुसार वही परावस्था ही मोक्ष का अपर पर्याय रूप है । शैव स्तोत्रों में इसे परमेश्वर समावेश कहा गया है, इस 'परावस्था' नामक अवस्था को प्राप्त साधक इसमें सदा आनन्दानुभव प्राप्त करता है, वही 'आत्मभक्ति' या 'परात्मभक्ति' नामक शब्दों से कही जाती है । अतः काश्मीरशैवदर्शन एवं शैवागमों में प्रत्यभिज्ञा अर्थात् स्व स्वरूप प्राप्ति का सर्वोत्तम एवं उत्कृष्ट साधन 'भक्ति' ही है ।

शैव भक्ति स्तोत्र का भक्ति आन्दोलन पर गहरा प्रभाव नजर आता है । शैव मत दक्षिण भारत में सातवीं और उसके बाद विकसित हुआ । उसी समय उत्तरभारत में जो महत्त्वपूर्ण दार्शनिक सम्प्रदाय उदित हुए, उनमें त्रिक (शैव मत का कश्मीरी रूप) जिसे उत्तर-पश्चिम भारत में वसुगुप्त ने स्थापित किया । कश्मीर में नवीं और दसवीं शताब्दी में जिस शैव भक्ति का विकास हुआ, वह आन्तरिक रहस्यवादी अनुभव पर आधारित विशुद्ध निर्गुण भक्ति का विशेष उदाहरण था । यह साङ्ख्य योग और अद्वैतवादी योग का मिला-जुला रूप था । इसकी अद्वैत प्रवृत्ति में परम शिव को ईश्वर और गुरु दोनों रूपों में केन्द्रीय स्थान प्राप्त है । इनके स्तोत्रों में शिव एवं परा शक्ति की स्तुति की गई है । जिनमें शिव के विश्वोत्तीर्ण एवं विश्वमय अवस्था के साथ-साथ उसकी परा नामक शक्ति, जो पुराणादि में लक्ष्मी अनेक नामों से जानी जाती है, उसकी स्तुति की है । इनके स्तोत्रों में ज्ञानयोग एवं भक्तियोग की निर्मल धारा अविरल प्रवाहमान है ।

सर्वप्रथम उत्पलदेव द्वारा रचित 'शिवस्तोत्रावली' नामक ग्रन्थ में अद्वैत-शैवदर्शन के मूल सिद्धान्तों के आधार पर चरम सीमा को प्राप्त समावेशमयी भक्ति की पूर्ण अभिव्यक्ति है । उत्पलदेव शैवशास्त्रों के मूलतत्त्वों के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक (अनुभवसिद्ध) दोनों पक्षों के पूर्ण ज्ञाता थे । शिव की पराशक्ति को प्राप्त करने का एक मात्र सहज उपाय भक्ति ही है, अर्थात् शिवभक्ति के द्वारा ही पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी दशाओं को प्राप्त परा नामक शक्ति को प्राप्त

---

[3] मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ॥ विवेकचूडामणि ३२

[4] न योगो न तपो नाऽर्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते ।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते ॥ भक्तिविलासाख्यस्तोत्र (शिवस्तोत्रावलीए) १८

[5] पूजकाः शतशः सन्ति भक्ताः सन्ति सहस्रसः । प्रसादमात्रमाश्वस्ता द्वित्राः सन्ति न पञ्चशाः ।
परात्रिंशिका विवृत्ति में उद्धृत पृ० २५

[6] त्वमेवात्मेश स्वस्र्य सर्वश्चात्मनि रागवान् ।
इति स्वभावसिद्धां त्वद्भक्तिं जानञ्ययेज्जनः ॥ भक्तिविलासाख्य (शिवस्तोत्रावली) ७

किया जा सकता है[7]। भक्त की योगियों से महत्ता बताते हुए कहते हैं कि योगियों को मात्र योगाभ्यास दशा में परमतत्त्व से साक्षात् होता है, व्युत्थानदशा में वह उसे नही देख पाता, जबकि भक्त व्युत्थानदशा में भी समाधिस्थ हो सकता है[8]। परमतत्त्व का स्वरूपलक्षण बताते हुए उत्पलदेव कहते है कि उच्चार, करण आदि लक्षणों अर्थात् उपायों से सम्बन्धरहित होना ही उसका स्वरूप लक्षण है[9]। कवि उस एकमात्र प्रमाण आगमरूपी शास्त्र की प्रशंसा करता है, जिसमें परमेश्वर के अद्वैतस्वरूप का समर्थन है, और उसे विचित्ररूप से चित्रि*त किया है, अतः आगम और परमेश्वर समानकोटिक ही है[10]। सत् और असत् इन सांसारिक वस्तुओं से इतर अर्थात् तीसरी गति वला वह आश्चर्यस्वरूप परमेश्वर है[11]।

केवल ज्ञान ही एकमात्र भेदप्रथा को समाप्त कर सकता है[12]। संकल्प-विकल्प रूप भेदात्मक ज्ञान ही उस परमेश्वर के साक्षात्कार में बाधक है, उसके नष्ट होते ही परमतत्त्व का पूर्ण स्वभाव प्रकट हो जाता है । परमेश्वर की भक्ति-भावना राग, द्वेष आदि से भरे हुए इस संसार में परमानन्द के रस को पुष्ट उसी प्रकार करती है, जिस प्रकार पक्षिणी अण्डे को सेकते हुए अपने बच्चों को रसों से पुष्ट करती है[13]। काश्मीरशैवस्तोत्र में मोक्ष प्राप्ति हेतु योगाभ्यास, तप, अर्चना, ध्यान इत्यादि मायीय साधनों की अपेक्षा अनुपाय रूप भक्ति ही सर्वोकृष्ट है[14]। अनुपायरूप भक्ति में गुरुकृपा या श्रेष्ठ पुरूष के दर्शन, स्पर्शन आदि से साधक मुक्ति या भगवत्सान्निध्य को प्राप्त करता है । अत एव अनुपाय को आनन्दोपाय भी कहा गया है ।

शैवस्तोत्र में वर्णित भक्ति का महत्त्व इसलिए भी अधिक है, क्योंकि यहाँ अन्य शास्त्रवत् अधिकारी या साधक हेतु विशेष नियम नही हैं । भक्ति सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिए ही है, क्योंकि भक्त के व्यवहार लोकोपकार हेतु होते हैं, न कि स्वार्थता युक्त । कश्मीरी स्तोत्रकारों में अभिनवगुप्त का स्थान प्रमुख है । अभिनवगुप्त के स्तोत्र न केवल साहित्यिक एवं दार्शनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, अपितु भक्तिसाहित्य की दृष्टि से अत्यन्त ग्रहणीय हैं । अभिनवगुप्त ने लगभग १२ स्तोत्र ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, तथा अनेक अप्राप्त है । भक्तितत्त्व की दृष्टि से ये स्तोत्र और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं । शैव दर्शन में भक्ति तत्त्व को अनुपाय के अन्तर्गत रखा गया है ।

परमार्थद्वादशिका नामक स्तोत्र में परमशिव की विशिष्ट भक्ति विवेचित है । परम शिव ही परम शिव ही परम अर्थ अर्थात् परमार्थ है । इस संसार में भेद-प्रभेद, द्वैत-अद्वैत आदि जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी नही है । इस स्तोत्र आचार्य अभिनवगुप्त ने ज्ञान से मुक्ति की बात कही है । जिस प्रकार आत्मा के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ की सत्ता नही उसी प्रकार परम चैतन्य के भीतर भी कुछ नही है । आत्मतत्त्व के अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह केवल रस्सी में सर्प के समान भ्रम ही है । उनके अनुसार अतत्त्व के परिहार किये बिना यदि तत्त्व को प्राप्त किया जाता है तो वह अतत्त्व ही है[15]। स्वप्नावस्था में संसार असत्य है, सुषुप्तावस्था में इसका विस्तार नही होता । उसके उर्ध्ववर्ती, उपाधिरहित चिदाकाश में इसका ज्ञान नहीं होता है । तात्पर्य यह है कि पार्थिव अर्थसमूह जागृत अवस्था में ही दिखलाई पङता है और वह भी कुछ क्षण के लिए । तत्त्वज्ञान के द्वारा इसका लोप होने पर यह परमतत्त्व से अपृथक् दिखाई देता है फिर वहाँ खण्डन की क्या बात[16]?

क्रमस्तोत्र में कवि क्रममतानुसार उस कालिनेय शक्ति को वन्दन करता है, जिसमें यह संसार प्रमाता, प्रमेय और प्रमाण रुप में क्रमरहित होकर अत्यन्त आनन्द के साथ रहता है, जो चित् शक्ति से युक्त है, तन्त्रसाधना में इस चित् शक्ति को कालिनेय शक्ति भी कहा है[17]। परमार्थचर्चा में परमार्थ अर्थात् शिव का वर्णन है, शिव की वैचित्र्यपूर्णशक्ति में ग्राह्य और ग्रहीता का भेद प्रतीत होता है । अभिनवगुप्तानुसार जो अन्य चिन्ताओं से मुक्त होकर मोक्षपद को प्राप्त करने के जो अभिलाषी जन इन सात श्लोकों का सामूहिक रूप से अपने हृदय में स्मरण करते हैं, वे भैरव, परधाम, मोक्ष अथवा शिवपद को बारम्बर प्राप्त होते हैं ।

आचार्य द्वारा क्रमस्तोत्र में क्रमविद्या को आधार बनाया है । उनके अनुसार सम्पूर्ण अन्तः एवं बाह्य क्रियाओं और विचारों को पूर्णतः शुद्ध करके क्रमशः मोक्ष को अथवा शिवत्व को प्राप्त किया जा सकता है । मन्त्रोच्चारण, ध्यान, समाधि, जप, तप, व्रतानुष्ठानादि ही क्रमिक अवस्थाएँ है,

---

[7] आमूलाद्वाग्लता सेयं क्रमविस्फारशालिनी। त्वद्भक्तिसुधया सिक्ता तद्रसाढ्यफलास्तु मे॥ भक्तिविलासाख्य (शिवस्तोत्रावली) १३

[8] प्रत्याहाराद्यसंस्पृष्टो विशेषोऽस्ति महानयम् ।
योगिभ्यो भक्तिभाजां यद्व्युत्थानेऽपि समाहिताः ॥ भक्तिविलासाख्य (शिवस्तोत्रावली) १७

[9] समस्तलक्षणायोग एव यस्योपलक्षणम् । सर्वात्मपरिभावनाख्यस्तोत्र (शिवस्तोत्रावली) ६

[10] स्वातन्त्र्यामृतपूर्णत्वदैक्यख्यातिमहापटे ।
चित्रं नास्त्येव यत्रेश तन्नौमि तव शासनम् ॥ सर्वात्मपरिभावनाख्यस्तोत्र (शिवस्तोत्रावली) २७

[11] सदसत्त्वेन भावानां युक्ता या द्वितयी गतिः ।
तामुल्ललङ्घय तृतीयसै नमस्चित्राय शम्भवे ॥ प्रणयप्रसादाख्यंस्तोत्रम् (शिवस्तोत्रावली) १

[12] नान्यद्वेद्यं किर्या यत्र नान्यो योगो विदा च यत् ।
ज्ञानं स्यात् किन्तु विश्वैकपूर्णा चित्त्वं विजृम्भते ॥ प्रणयप्रसादाख्यंस्तोत्रम् ॥ (शिवस्तोत्रावली) १२

[13] रागादिभयभवाण्डभवालुठितं त्वद्भक्तिभावनाम्बिका तैस्तैः ।
आप्याययतु रसैर्मा प्रवृद्धपक्षो यथा भवामि खगः॥ विधुरविजयनस्तोत्र ४

[14] न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम् । एवमेव शिवाभासस्तं नुमः भक्तिशालिनम् ॥ भक्तिविलासाख्य (शिवस्तोत्रावली) १

[15] यद्यतत्त्वपरिहारपूर्वकं तत्त्वमेषि तदतत्त्वमेव हि ॥ परमार्थद्वादशिका २

[16] स्वप्ने तावदसत्यमेव सरणं सौसुप्तधाम्नि प्रथा, नैवास्यास्ति तदुत्तरे निरुपदौ चिद्व्योम्नि कोऽस्य ग्रहः ।
जाग्रत्येव धरावदर्थनिचयः स्याच्चेत् क्षणे कुत्रचित्, ज्ञानेनाथ तदत्ययेऽपृथगिदं तत्रापि का खण्डना ॥ क्रमस्तोत्र ९

[17] ततो देव्यां यस्यां परमपरिपूर्णस्थितिजुषि क्रमं विविद्याशु स्थितिमतिरसात्संविदधति ।
प्रमाणं मातारं मितिमथ समग्रं जगदिदं स्थितां क्रोडीकृत्य श्वयति मम चित्तं चितिमिमाम् ॥ क्रमस्तोत्र २७

जिनसे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । भैरव स्तोत्र में कवि परमतत्त्व भैरव की वन्दना करते हुए कहते हैं कि यद्यपि बाह्य पूजा, व्रत, दान, तप और स्नान इत्यादि कष्ट को दूर करने वाले हैं, तथापि आपके विषय में शास्त्ररूपी परामृत की चिन्ता ही शान्ति की धारा बहाती है[18]। भैरव स्तोत्र में ही आचार्य अपने समय के बारे में उल्लेख करते हैं, जिसमें वह स्तोत्रकाल को उद्धृत करते है[19]।

देहस्थदेवतास्तोत्र में स्तोता शरीर में स्थित प्राण, अपानवायु, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियों को देवतास्वरूप मानकर उनकी स्तुति करता है । उपर्युक्त सभी का समूह ही देवताचक्र है और शरीरस्थ देवता सबका स्वामी है । अनुभवनिवेदनम् नामक स्तोत्र में योगी, योग, और योगाभ्यासादि के विषय में वर्णन किया गया है । स्तोत्रानुसार योग कोई अन्यत् बाह्य प्रयत्न नही है, अपितु दैनिक जीवन-यापन का तरीका है । जो कोई शब्द मुख से निकलता है, वह लोकोत्तर मन्त्र है, सुख-दुःख के जन्म वाले शरीर का संस्थान ही विचित्रमुद्रा है, प्राण का स्वाभाविक प्रवाह ही अद्भुत योग है[20]। जिसमें वर्ण-रचना समाप्त हो जाती है, वह मन्त्र । वह मुद्रा उत्पन्न होती है जिसमें समस्त शारीरिक क्रियाएँ समाप्त हो जाती है । जिसमें प्राण का प्रवाह क्षीण हो जाता है, वह योग है, अतः शिवप्राप्ति का आनन्द अद्भुत है[21]।

रहस्यपञ्चदशिका नामक स्तोत्र में जीवन्मुक्त अभिनवगुप्त ने शिव की संविद्रूपा अनेक प्रकार की शक्तियाँ जैसे सरस्वती, शिवा, अम्बिका आदि की स्तुति की है । संविद् के स्वामी शिव अपनी शक्ति शिवा के माध्यम से ही पञ्चकृत्यों अर्थात् सृष्टि, स्थिति, विनाश, निग्रह और अनुग्रह करते रहते हैं । उसके बिना शिव में क्रिया, इच्छा, ज्ञान कुछ भी नही होता है । यही शक्ति (माया) अज्ञानी लोगों को रोगरूपी शरीर से युक्त करती है । इस स्तोत्र में कवि ब्रह्ममुहुर्त में भगवान् की प्रार्थना, समाधि, सन्ध्या इत्यादि के करने पर बल देते हैं[22]।

इस प्रकार यद्यपि काश्मीर स्तोत्रकारों की विशिष्ट परम्परा है, तथापि उत्पलदेव एवं अभिनवगुप्त के स्तोत्र सर्वोत्कृष्ट हैं । यहाँ समावेशमयी भक्ति को मुक्ति का साधन माना गया है, जिन भक्तों पर प्रभु की दया दृष्टि एवं अनुग्रह होता है, वे सदा के लिए जन्म मरण के चक्र से छूट जाते हैं । अर्थात् समावेशमयी भक्ति ही मुक्ति है । समावेशभक्ति के अन्तर्गत ही अणिमा इत्यादि अष्ट सिद्धियों की सम्पत्तियों मानी गई है । इसी भक्ति को ज्ञान की सर्वोत्कृष्टावस्था एवं योग की परम भूमि कहा है, अर्थात् भक्ति ज्ञान एवं योग से उत्तम है । यह भक्त को भक्तिशील बनने हेतु गृहस्थाश्रम का त्याग आवश्यक नही है, साधक या मनुष्य सांसारिक बन्धन में रहते हुए भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है । इस प्रकार शिवस्तोत्रावली में अनुग्रहपूर्ण समावेशमयी भक्ति पूर्णरूप से युक्त है । उत्पलदेवाचार्य द्वारा कथित यह भक्ति उनकी आत्मानुभूति एवं चरमावस्था का प्रमाण है । अतः काश्मीरशैवदर्शन एवं शैवागमों में प्रत्यभिज्ञा अर्थात् स्व स्वरूप प्राप्ति का सर्वोत्तम एवं उत्कृष्ट साधन 'भक्ति' ही है ।

काश्मीरसूफी साहित्य में प्राप्त भक्ति स्वरूप एवं प्रभाव –

काश्मीर में १४वीं शताब्दी में सूफी कवियों ने नये स्वरूप में प्रस्तुत किया । यह सूफी साहित्य पूर्णरूप से भारतीय संस्कृति, विशेषतः काश्मीरी शैव भक्ति से प्रभावित प्रतीत होता है, जिसमें न केवल उपास्य देव परमशिव है, अपितु विविध शैव सिद्धान्त भी प्रतिपादित किए गए है । जिसमें प्रत्यभिज्ञा, गुरुरहस्य, दीक्षा, प्राणायाम एवं योगाङ्ग प्रमुख है । काश्मीर शैव दर्शन में परमेश्वर लाभ हेतु विकल्पक्षय एवं जीव के संस्कार में प्राणायाम को श्रेष्ठ माना गया है, उसका ही प्रभाव सूफी भक्ति साहित्य में प्रतीत होता है ।

लल्द्यद् के वाख साहित्य का मूल आधार दर्शन है । उसका प्रत्येक वाख़ दार्शनिक चेतना का आगार है । जिस पर प्रमुखतः शैव, वेदान्त तथा सूफी दर्शन की छाप दिखायी देते है । जिस समय लल्दयद् का आविर्भाव हुआ, उस समय कश्मीर में इस्लाम धर्म का एक विचार पद्धति के रूप में आगमन हो चुका था । देश में घोर अशान्ति और धार्मिक अव्यवस्था व्याप्त थी । धर्मान्ध कट्टरपन्थी अपने-अपने धर्म सम्प्रदायों का प्रचार-प्रसार करने में व्याप्त थे । सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विषमताएँ भी जनता को आङे हाथों ले रही थी । ऐसे विकट क्षणों में लल्द्यद् ने जनता के समक्ष धर्म के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए जनवाणी में परम सत्य की सार्थकता को ऐसी व्यापक तथा सर्वसुलभ संघटिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया, जिसमें न तो कोई दुराव था, न कोई आवरण एवं न कोई विक्षेप । लल्द्यद् की यह सत्य-प्रतिष्ठा विशुद्धतः उसकी अन्तरानुभूति की देन है । पञ्चश्लोकी स्तोत्र में शिव के विश्वोत्तीर्ण अवस्था का वर्णन है, तथा उसको प्राप्त करने के लिए गुरु-दीक्षा, शास्त्रोपदेश पर बल देते हैं[23]।

लल्द्यद् विश्वचेतना को आत्मचेतना में तिरोहित मानती है । लल्द्यद् के समय कश्मीर में प्रथम बार इस्लाम का आगमन हुआ ही था, तथा धर्म के नाम युद्ध जैसी सम्भावनाएँ थी । तथापि लल्द्यद् ज्ञान के द्वारा ही लोगों को जागृत करने के

---

[18] शङ्कर स्त्यमिदं व्रतस्नानतपो भवतापविदारि । तावकशास्त्रपरामृतचिन्ता स्यन्दति चेतसि निर्वृतिधाराम् ॥ भैरवस्तोत्र ४

[19] पौषरसाष्टगकृष्णदशभ्यामभिनवगुप्तः स्तवमिमकरोत् ।
येन विभुर्भवमानसतापं नाशयति स्वजनस्य झटिति दयालुः ॥ भैरव स्तोत्र १०

[20] शब्दः कश्चन यो मुखादुदयते मन्त्रः स लोकोत्तरः । संस्थानं सुकदुःखजन्मवपुषो यत्कापि मुद्रैव सा.....।। अनुभवनिवेदनम् ३

[21] मन्त्रः स प्रतिभाति वर्णरचना यस्मिन्न संलक्ष्यते, मुद्रा सा समुदेति यत्र गलिता कृत्स्ना क्रिया कायिकी.....।। अनुभवनिवेदनम् ४

[22] ब्राह्मे मुहुर्ते भगवत्प्रपत्ति स्ततः समाधिर्नियमोऽथ सान्ध्यः ।
यामौ जपार्चादि ततोऽन्यसत्रं शेषस्तु कालः शिवशेषवृत्तिः ॥ रहस्यपञ्चाशिका १

[23] गुरोर्वाक्याद् युक्तिप्रचयरचनोन्मार्जनवशात्, समाश्वासाच्छास्त्रं प्रति समुचिताद्वापि कथितम् । पञ्चश्लोकी ४

प्रयास किया जिसमें वे कहती है कि- सहिष्णुता नामक गुण को अपनाना अत्यन्त कष्ट साध्य है, इसके लिए बडे-बडे त्याग की आवश्यकता है, तथापि इसको पालन करना चाहिए।

कश्मीरी ग्रन्थों में विशेषतः तीन शब्दों का प्रयोग किया गया, जिनको शास्त्रों में प्रयोग किया गया है। जिनमें देव (God), अवतार (Incarnation), और वर (Boon)। लल्द्यद् के वाखों में स्पष्ट रूप से कश्मीर की पूर्ण-परम्परा विकसित नजर आती है। जिसमें वे शैव दर्शन के सिद्धान्तों के अत्यधिक करीब हैं। जिसमें गुरु-दीक्षा को स्वीकार किया गया है, गुरु के वचन रूपी दीक्षा के द्वारा ही लल्द्यद् अपने उस स्वरूप को जानने के लिए इच्छुक हुयी, जिसे वह अपने भीतर ही होने पर भी नही देख पा रही थी[24]। अपने गुरु वचन को ही हृदय में रखकर अपने अज्ञानरूपी इस शरीर को ज्ञानरूपी गङ्गा के जल से पवित्र किया। तथा भय को सहते हुए, जीवन मुक्ति को प्राप्त किया[25]।

साधना पक्ष पर बल देते हुए वे कहती है कि साधना निरन्तरता और अभ्यास द्वारा ही प्राप्त होती है, साधना की यात्रा में अनेक मोहरूपी विघ्न आते हैं, जिनसे पार पाना अत्यन्त कठिन है[26]। उनकी यह उक्ति वेदान्तियों द्वारा निर्विकल्पक समाधि में प्रतिपादित चार दोषों के समान हैं। जिनमें साधक परमावस्था को प्राप्त करने से पूर्व ही अन्य विषयों में आनन्द प्राप्त करने लगता है। यद्यपि लल्द्यद् ने साधना पक्ष में योग को महत्त्व दिया है, तथापि केवल श्वास, प्रश्वास को वश में करके एवं योग एवं प्राणायाम द्वारा उस परमशिव को प्राप्त नही किया जा सकता है, तथा योग केवल उस मार्ग में जाने का माध्यम है, उसके बाद भी सद्गुरु के उपदेशों की आवश्यकता होती है[27]।

लल्द्यद् ने साधना पक्ष में योग को विशिष्ट स्थान दिया है। यह योग कोरे बौद्धिक चिन्तन का प्रतिफलन नही है, उसमें प्रेम का माधुर्य विद्यमान है। लल्द्यद् ने योग की अनेक अन्तर्दशाएँ एवं कोटियाँ बतायी है, योगी को इन दशाओं से विधिवत् गुजरना पडता है, उसके द्वारा ही उसे अमरत्व की प्राप्ति होती है। उन्होंने शरीर में स्थित षट्चक्रों मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा को वश में करके ब्रह्मरन्ध्र को जगाकर प्राणायाम द्वारा अपने अन्तर को वश में करके प्रेम की अग्नि द्वारा शिव को प्राप्त करने की बात कही है।

लल्द्यद् के अनुसार जो पूरक प्राणायाम द्वारा मन को संयमित कर वायु को भीतर और बाहर खींचकर नियन्त्रित करे, उसे न तो भूख स्पर्श कर सकती है, न प्यास। जो अन्त तक यह विधि अपनाये संसार में उसी का जीना सार्थक है[28]। वे कहती है कि ईश्वर अन्दर ही था, तथापि मैं उसे बाहर ढूढती रही, तब प्राणायाम द्वारा मुझे अपने ही रगों के माध्यम से सांत्वना मिली और ध्यानादि योग क्रिया से इस जगत् की कैवल्य सत्ता को जान लिया। परिणामस्वरूप मेरा रंग जगत् के रंग में मिल गया[29]। लल्द्यद् ने ज्ञान की प्रामाण्यता के लिए किन्हीं शास्त्रों या उपदेशों का आश्रय नही लिया, अपितु स्वानुभव या स्वानुभूति को ही एक मात्र प्रमाण माना है, जो साधक का विशेष गुण है। उनके अनुसार मैंने स्वयं चित्तरूपी तुरंग को लगाम लेकर थाम लिया, पुनः दसों नाडियों के श्वासोच्छवास के साथ उसको बाँध दिया, तदनन्तर ही प्राण-अपान रूपी चक्र को नियन्त्रित करने में सफल हुई, और परम शून्य दशा को प्राप्त हुई[30]।

सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा उस परमचेतना का आभास होना सम्भव है। यह रहस्य उसे अपने गुरु से ज्ञात हुआ था - लल्द्यद् ने धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरों तथा विक्षेपों का खुलकर खण्डन किया है। कबीर की भाँति उन्होंने भी धर्म के नाम पर लोगों को व्यथित करने वाले लोगों पर कङा प्रहार किय और धर्म का वास्तविक अर्थ मन की शुद्धता को बताया। लल्द्यद् अपने वाख़ साहित्य में न केवल अपने गुरु एव अनुभवों से प्राप्त विचारों को ही आविष्कृत करती है, अपितु वह उस समय के समाज का पूर्ण अवलोकन कर उस दुर्दशा ने निजात पाने का भी मार्ग प्रशस्त करती है।

उनके अनुसार मन को वश में करना अत्यन्त आवश्यक है, ध्यानपूर्वक अपने श्वास-प्रश्वास को काबू में रखकर ही मन संयमित हो सकता है, अन्यथा मन के संयमित हुए बिना अनेक लोगों द्वारा अपने जीवन एवं गृह-त्याग कर दिए[31]। मन और इन्द्रियाँ सर्वदा सभी दिशाओं की ओर शरीर रूपी रथ को खींचती है, काश संयमित होकर ये एक ही दिशा की ओर रस्सी को खींचे, तब भला ग्यारह (एकादश इन्द्रियों) की देखरेख में गाय कैसे इधर-इधर भाग सकती है[32]।

---

[24] बहिरङ्गाद् अन्तरङ्गं स्वं प्रविशेति गुरुर्जगौ। कायान्तरम् अनेनाभूद् विवस्त्रा नर्तने रता॥ लल्द्यद् २

[25] गुरोर्गिरं गीर्णवती निजान्तरे गङ्गाम्भसा धौतवती निजां तनुम्।
एकं शिवं प्राप्तवती यदा तदा मुक्त्वा मुदा मृत्युभयात् स्वजीवने॥ लल्द्यद् ३

[26] समागता सरलपथेन विश्वे निवर्तने राजपथो न विद्यते।
अस्तंगते दिनकरे स्वकरे न देयं यायां कथं निधनपारमपारतोयम्॥ लल्द्यद् ७

[27] कया दिशा केन पथागताहं पश्चाद्गमिष्यामि पथाऽथ केन।
इत्थं गतिं वेद्मि निजां न तस्मात् उच्छ्वासमात्रेण धृतिं भजामि॥ लल्द्यद् ९

[28] यः पूरकेण चित्तं स्वं रोधयेत्क्षुत्तृडादिकम्। न पीडयति संसारे सफलं चास्य जीवितम्॥ लल्द्यद् ८६

[29] अन्तस्थितस्य देवस्य बहिरन्वेषणं कृतम्, प्राणायाम-प्रयासेन तस्यावासिर्मया कृता।
ध्यानयोगेन प्राप्ताऽहं कैबल्यपद दुर्लभम्, तेन मे रूपसौभाग्यं तस्य रूपेण संगतम्॥ लल्द्यद् १६१

[30] नियन्त्रितः खलीनेन मया चित्त-तुरङ्गमः। बद्धो नाडिकायुक्त श्वास-प्रश्वास-रज्जुभिः।
तदा शशिकला सम्यक् जाता पीयूषवर्षिणी, एवं शून्येऽमिलच्छून्यमभेदो जीव ब्रह्मणोः॥ लल्द्यद् १०३

[31] कति गता गहनं गृहत्यागिनो, विफलिता अवशीकृतमानसाः।
विगयन्निज प्राणपरिक्रियां परिलभस्व सदा निजतोषणम्॥ लल्द्यद् ११

[32] पञ्च चैव विकारा दश तथैकादश सङ्ख्यकाः। गता विहाय मे देहं भिन्न-भिन्नानुमार्गाः।
यदि ते गां हि कर्षेयुरेकं मार्गानुसारतः, अहो मदीया धी-धेनुः कथं भूयात् कुमार्गया॥ लल्द्यद् १३

लल्द्यद् के अनुसार साधना पक्ष बाह्याडम्बरों से रहित होना चाहिए । इसमें कुशा, तेल, दीप, जल आदि की कोई आवश्यकता नही होती, सद्भाव से जो गुरु की बात मन में धारण करें, और नित्य सद्भावना से परमशिव का स्मरण करें, वह सहज ही कर्मबन्धनों से मुक्त होकर आनन्द को प्राप्त करता है[33]। उसी प्रकार व्रत और उपासना भी व्यर्थ है, परोपकार करना ही मनुष्य का कर्तव्य है[34]। काम, क्रोध और लोभ अत्यन्त घातक हैं, इनको समाप्त कर देना चाहिए, अन्यथा इनके द्वारा ही मनुष्य मारा जाता है, इनको सुविचाररूपी भोजन द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है[35]। लल्द्यद् ने परमशिव को प्राप्त करने हेतु विशेष साधना पर बल नही दिया है, अपितु दैनिक कर्मों के सम्यक् आचरण पर विश्वास किया है । दैनिक कर्म ही अर्चना है, प्रतिदिन जो जिह्वा से उच्चरित किया वही मन्त्र, तथा देह से यदि कोई कार्य लिया तो वही परिचय ही प्रत्यभिज्ञा है (यह ज्ञान कि परमेश्वर और जीवात्मा एक ही है) और वास्तव में परमशिव के तन्त्र का सार भी यही है[36]। नारी के महिमा के सम्बन्ध में लल कहती है कि - मातृ रूप में यह दुग्ध पिलाती है, भार्या रूप में विषय -वासनाओं से तृप्ति कराती है, और अन्ततः माया रूप से प्राण हरण कर लेती है । अतः शिवप्राप्ति अत्यन्त कष्टसाध्य है । इसी प्रकार लल्द्यद् अपने वाखों में कर्मवाद एवं निष्कामकर्म की चर्चा करती है[37]।

योग-दर्शन में प्रतिपादित ईश्वर के वाचक शब्द ओंकार का महत्व बताते हुए कहती है कि जो मात्र ऊँकार को नाभिस्थान में ध्यानपूर्वक धारण कर ले, तथा कुम्भक प्राणायाम से उसे ब्रह्माण्ड तक पहुँचा दे, और केवल ऊँ को जप करे, उसे सहस्र मन्त्रों की आवश्यकता नही रहती है[38]। उस परमतत्त्व के स्वरूप निरूपण करते हुए कहती है कि अनाहत ऊँ जिसकी ध्वनि है, शून्य जिसका स्वरूप है (अर्थात् शून्यालय में जिसका वास है), जिसका न नाम, न वर्ण, न गोत्र, न रूप है, इस प्रकार के स्वरूप से कहा जाता है । आत्म-विमर्श से जिसे नाद-बिन्दु का ज्ञान है, वही योगशक्ति वाला साधक निर्गुणरूपी अश्व पर सवार होकर उस परमत्त्व को प्राप्त कर सकता है[39]।

निरन्तर योगाभ्यास द्वारा जब विस्तार-विकास का लयीकरण हो जाता है, यानि अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् एक ही हो जाते हैं, तब सगुण (ब्रह्माण्ड) और गगन (शून्य, निर्गुण) एक समान लगने लगते हैं, तथा शून्य भी नाम शेष हो जाता है । केवल अनामय (रोग, शोक, उपाधि विहीन) शिव तत्त्व शेष रहता है[40]।

उनके अनुसार शास्त्र या गुरूपदेश उस परमतत्त्व तक पहुँचाने के साधन-मात्र है, जब तान्त्रिक क्रिया निष्क्रिय हुई तो मन्त्र (जप, तप, योगादि) सामने आये, मन्त्र भी निष्क्रिय हुआ तो चित्तमात्र शेष रहा, तथा चित्त के समाप्त होते ही किञ्चिन्मात्र भी शेष न रहा, अपितु शून्य के साथ ही सब कुछ मिल गया[41]। ईश्वर के नाम और रूप में अनेकत्व को मानते हुए कहती है कि ईश्वर के नाम-रूपात्मक वैभिन्न्य में उस परमतत्त्व को पा लेना बडी बात है, इसके लिए सुख और दुःख का सहन और काम, क्रोध, घृणा और वैर का मन से समाप्त हो जाना आवश्यक है, तभी शिवमुख के दर्शन होंगे[42]।

एकमात्र सनातनता को मानते हुए लल्द्यद् हिन्दू एवं मुसलमान के भेद का खण्डन करते हुए कहती है कि - शिव जल-थल में व्याप्त है, अतः हे मनुष्य तू हिन्दू और मुसलमान का भेद न जान । यदि तु प्रबुद्ध है तो अपने आपको पहचान, यही साहिब से परिचय करने के वराबर है[43]। अतः लल्द्यद् के दर्शन एवं साधना प्रक्रिया में स्पष्टतः भारतीय संस्कृति की झलक प्राप्त होती है, चाहे वह सिद्धान्त सम्बन्धी हो अथवा साधना सम्बन्धी। प्रायः अधिकांश स्थलों पर शैव दर्शन और तन्त्र साधना का प्रभाव है । जिसमें गुरुदीक्षा, आडम्बररहित आन्तरिक पूजा, योग आदि प्रमुख है ।

अतः कश्मीरी स्तोत्रकारों द्वारा स्तोत्रों में न केवल भक्ति को ही समाहित नही किया है, अपितु शैव दर्शन के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य को भी भक्ति के माध्यम से प्रतिपादित किया है । जिसके द्वारा सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी स्तोत्राध्ययन कर न केवल दार्शनिकता को, अपितु आध्यात्मिकता को भी प्राप्त कर लेता है । सूफी साधना का अन्तिम लक्ष्य है वस्ल (ईश्वर मिलन) । भारतीय साधना इसी लक्ष्य को लिए आज तक प्रगति करती आ रही है । जहाँ एक ओर कश्मीरी भक्ति साहित्य का संत कावियों में स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है, वही कश्मीरी सूफी परम्परा भी इससे अछूती नही रही है । सूफी कवियों द्वारा भी शिव को ही परमतत्त्व के रुप में मान्यता दी है । लल्लेश्वरी द्वारा लिखित 'वाख़' नामक

---

[33] पुष्पादिकं द्रव्यमिदं न तस्य, पूजासु सर्वमुपयोगि किञ्चित् ।
गुरुपदेशाद् दृढया च भक्त्या स्मृत्यार्च्यते येन विशुद्ध आत्मा ॥ लल्द्यद् १४

[34] अलंव्रतैर्बाह्यप्रदर्शनैरलं परोपकारं कुरु मुख्य-कार्यम् ॥ लल्द्यद् १३९

[35] कामक्रोधादिकान् शत्रुन्, नाशयात्मविनाशकान् । सद्विचारेण ते शान्तिं, गमिष्यन्ति न संशयः ।
विषयाः सन्ति के तेषां दृढं सम्यक् विचारय, एवं कृतप्रयत्नस्त्वं कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ लल्द्यद् ४५

[36] करोमि यत्कर्म तदैव पूजा, वदामि यच्चापि तदेव मन्त्रः । यदेव चायाति तथैव योगाद्-द्रव्यं तदेवास्ति ममात्र तन्त्रम् ॥ लल्द्यद् ४९

[37] यादृशं कुरुते कर्म तादृशं लभते फलम्, नान्यस्तु फलभागी स्यात् स्वात्मैव फलभुग्भवेत् ।
फलकामो न कुर्यान्निःस्पृहः कार्यमाचरेत्, अर्पयित्वात्मने सर्वं कल्याणं लभते परम् ॥ लल्द्यद् ५१

[38] आ ब्रह्माण्डं नाभितो येन नित्य मोंकाराख्यो मन्त्र एको धृतोऽयम् ।
कृत्वा चित्तं तद्विमर्शैकसारं किं तस्यान्यैर्मन्त्रवृन्दैर्विधेयम् ॥ लल्द्यद् ६६

[39] अनाहतः खस्वरूपः शून्यस्थो विगतामयः । अनामरूपवर्णोऽजो नादबिन्द्वात्मकोऽस्ति सः ॥ लल्द्यद् ६९

[40] अभ्यासेन लयं नीते दृश्ये शून्यत्वमागते । साक्षिरूपं शिष्यते तच्छान्ते शून्येऽप्यनामयम् ॥ लल्द्यद् ७०

[41] त्रन्त्रं सर्वं लीयते मन्त्रश्चित्ते लीयते नादमूलः । चित्ते लीने लीयते सर्वमेव, दृश्यं द्रष्टा शिष्यते चित्स्वरूपः ॥ लल्द्यद् ८१

[42] नामानि रूपाणि बहूनि सन्ति, विश्वस्य मध्ये जगदीश्वरस्य ।
द्वन्दं सहिष्ये न करिष्यसे घृणाम्, तदाहि ते शङ्करदर्शनं भवेत् ॥ लल्द्यद् १३७

[43] स्थले स्थले शङ्कर एव राजते, हिन्दु तुरुष्केषु कथं विभेदः ।
प्रबुध्य स्वात्मान मवेहि सम्यक् स परिचयस्ते हरिणा समं स्यात् ॥ लल्द्यद् १४८

स्तोत्रों में स्पष्ट रूप से शैव दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है। जिसमें सूफी कवियों ने केवल शैव दार्शनिकता को ही पोषित नही किया है, अपितु उपासना पद्धति में भी प्रायः सभी पद्धतियों को मान्यता दी है, एवं तांत्रिक साधना को भी महत्त्व दिया है। जिसमें ध्यान, अनुपाय, क्रम साधना, दीक्षा, मन्त्र, कुण्डलिनी योग, जप इत्यादि प्रमुख हैं।

एक ओर जहाँ लल्लेश्वरी जप, मन्त्र, ध्यान इत्यादि का सहारा लिया है, वही अनुपाय अवस्था की भी स्पष्ट चर्चा की है। लल्लेश्वरी द्वारा विकल्पावस्था में जप, ध्यान इत्यादि द्वारा विशुद्ध चैतन्य को प्राप्त करने की चर्चा की है, वही विकल्पाभाव में पुष्प द्रव्यों की अनुपयोगिता को भी बताया है। उत्पलदेव शिवस्तोत्रावली नामक ग्रन्थ में शंकर के ही स्तुति गीत गाये हैं। इसमें अद्वैत शैव दर्शन के मूल सिद्धान्तों के आधार पर चरम अवस्था तक पहुँची हुई समावेश-मयी भक्ति की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। या यह कहा जाए कि इन स्तोत्रों की पृष्टभूमि या अधार स्तम्भ शैव शास्त्र के सिद्धान्त है। उत्पलदेव द्वारा प्रकृत ग्रन्थ में शैव शास्त्र के मूल तत्त्वों के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों को चित्रित किया है। अभिनवगुप्त ने इन्हीं सिद्धान्तों को आधार बनाकर अपनी स्तोत्र रचना की है।

अनुत्तराष्टिकास्तोत्र में आचार्य ने कहा कि – 'संसारोऽस्ति न तत्त्वतः तनुभूतां बन्धस्य वार्त्रैव का'। अभिनवगुप्त ने भी अपने स्तोत्रों में शिव एवं उनकी पराशक्ति की स्तुति की है, इनमें शिव के विश्वत्तीर्ण और विश्वमय अवस्था की साथ-साथ उसकी परा नामक शक्ति जो पुराणादि में लक्ष्मी, सरस्वती आदि अनेक नामों से जानी जाती है। पुराणों में गणेश, लक्ष्मी आदि देवी देवाता परमशिव के सहायक है, उसी प्रकार अभिनवगुप्त ने भी उसी प्रकार इन देवताओं की स्तुति की है। अतः इन स्तोत्रों में ज्ञान योग एवं भक्ति योग की निर्मल धारा अविरल प्रवाहमान है। अन्य स्तोत्रों की अपेक्षा इनके स्तोत्रों अलग महत्त्व रखते हैं, क्योंकि इनमें भक्ति-भावना के साथ-साथ शैव दर्शन के तत्त्वों एवं सिद्धान्तों का समावेश है।

कश्मीर में सदियों से हिन्दू और मुसलमान एक साथ रहता हुआ आया है। फलतः इस्लाम में पण्डित और भट जैसे उपनाम है, अतः एक विशिष्ट संस्कृति और जीवन यापन का तरीका था। कश्मीरी मुसलमानों को हिन्दू संस्कृति ने अत्यधिक प्रभावित किया, जिसके फलस्वरूप कश्मीर में सूफियों का अलग दृष्टिकोण सामने आया। कुछ लोग इन्हें मुस्लिम ऋषि भी कहते हैं। इन ऋषियों में सबसे प्रसिद्ध ऋषि शेख-नूर-उद-दीन हुए। जिन्हें हिन्दु और मुसलमान प्यार से 'नन्दऋषि' कहते है। तथा कश्मीरी पण्डित इन्हें 'सहजानन्द' कहते हैं। इनका जन्म १३७७ ई. में कश्मीर के कैमुह नामक गाँव में हुआ। कहा जाता है कि इन्होंने ३० वर्ष की अवस्था में एक गुफा में जाकर १२ वर्ष तक घोर साधना की।

सम्पूर्ण भारतवर्ष को कश्मीर ने अपने ज्ञान से प्रभावित किया, अतः प्रायः प्रत्येक समाज में इन दिव्य पुरुषों को 'ऋषि' कहने की प्रथा चली। उनके वाक्यों में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट झलक दिखाई पढती है। एक स्थल पर वे कहते हैं कि ईश्वर एक है, पर उसके नाम अनेक हैं, और उसके बिना छोटे से छोटे जीव भी जीवित नही रह सकता[44]। वही प्रभु है, और सभी को उसकी शरण लेनी पङती है, अतः सही रास्ते पर चलना चाहिए, एवं जो अपनी सभी इन्द्रियों को शुद्ध कर लेता है, वह भाव विभोर हो जाता है[45]। ईश्वर का स्मरण करते हुए जब मनुष्य के क्रोध और अहंकार समाप्त हो जाए, भोजन की चिन्ता भी समाप्त हो जाए और निष्काम भाव से ही कार्यों को करने लगे, तभी व्यक्ति अपने स्वरूप को जान सकता है[46]। पाँच नदियों (इन्द्रियों) के प्रवाह को रोको, और गहरी सांस लेकर एक ही सांस अपने अहंकार को नियन्त्रित करने का प्रयास करना चाहिए[47]। इस प्रकार नन्द ऋषि के वाक्यों में योग, वेदान्त एवं शैव दर्शन की स्पष्ट छाप मिलती है।

अतः काश्मीर में प्रारम्भिक सूफी साहित्य पर शैवदर्शन अथवा भक्ति का पूर्ण प्रभाव प्राप्त होता है। जिस प्रकार शैवाचार्यों द्वारा भक्ति को अनुपाय, एवं उपाय रूप गुरू उपदेश एवं योग इत्यादि द्वारा प्राप्ति का मार्ग बताया, उसी प्रकार सूफी कवियों ने भी अपने भक्ति साहित्य में इसे स्वीकृत किया। काश्मीरी आचार्यो के समान सूफी कवियों ने भी प्रत्यभिज्ञान को जीवनोद्देश्य स्वीकृत किया है। भक्ति की प्राप्ति एवं परमेश्वरानुग्रह का कथन सूफी कवियों द्वारा भी प्रतिपादित है। इसी प्रकार भक्ति की प्राप्ति में ज्ञान को परमसाधन स्वीकृत किया है। अतः कश्मीरी सूफी साहित्य प्रायः पूर्णतः काश्मीरशैव भक्ति से प्रभावित है, या उसने काश्मीरी भक्ति परम्परा को पुनर्व्याख्यायित किया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार लल्लेश्वरी एवं नन्द ऋषि द्वारा यद्यपि एक अलग परम्परा द्वारा आध्यात्मिकता को प्राप्त करने का मार्ग चुना, तथापि इनके द्वारा भी शैव दर्शन एवं सिद्धान्तों से सम्बन्धित विषयों को ग्रहण किया। लल्लेश्वरी के बाख़ साहित्य का मूल आधार दर्शन है। उसका प्रत्येक वाख़

[44] His names are many, not a blade of grass exists without remembering him.
Not even a fly exists without his sustenance. Nuruddhin 39 (*Lallā to Nūruddīn* – Jaishree K. Odin)

[45] The same lord is both here and there. Supplicate and seek refuge.
Walk on the right path and not on the crooked one.
He who purifies five sense organs, sees in the heart and is ecstatic.
Nuruddhin 122 (*Lallā to Nūruddīn* – Jaishree K. Odin)

[46] Remember God and Practice austerities.
When your appetite for food is lost, you will become graceful.
Your greed and anger will die and hate and pride will not last.
Performing actions with detachment will bear fruit.
Only then empty vessels will be filled to the brim. Nuruddhin 91 (*Lallā to Nūruddīn* – Jaishree K. Odin)

[47] Control the flow of the five rivers breathes in deeply.
Use the same breath to control your pride. It will lead to valuable knowledge.
Nuruddhin 117 (*Lallā to Nūruddīn* – Jaishree K. Odin)

दार्शनिक चेतना का आगार है, जिस पर प्रमुखतः शैव, वेदान्त तथा सूफी दर्शन की छाप स्पष्ट है । जिस समय लल्लेश्वरी का आविर्भाव हुआ, उस समया कश्मीर में इस्लाम धर्म का एक विचार पद्धति के रूप में आगमन हो चुका था । देश में घोर अशांति और धार्मिक अव्यवस्था व्याप्त थी । ऐसे विकट क्षणों में लल्लेश्वरी ने जनता के समक्ष धर्म के वास्तविक स्वरूप स्पष्ट करते हुए जन-वाणी में परमसत्य की सार्थकता को ऐसी व्यापक तथा सर्वसुलभ तथा संघटिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया । जिसमें न कोई दुराव था, न कोई आवरण, न कोई विक्षेप। लल्लेश्वरी की यह सत्य प्रतिष्ठा विशुद्धता उनकी अन्तराभूति की देन है। वे विश्वचेतना को आत्मचेतना में तिरोहित मानती है । सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा उस परम चेतना का आभास होना सम्भव है । यह रहस्य उसे अपने गुरु से ज्ञात हुआ था । उनके अनुसार इस जगत् का संहारकर्ता एक मात्र परमशिव ही है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जैसे भक्ति-साहित्य के प्रभाव के कारण ही अनेक बाह्य आक्रमणों के उपरान्त भी भारत एक सूत्रता के बन्धन में बधा रहा, उसी प्रकार आज भी कश्मीरी स्तोत्र साहित्य एवं सूफी परम्परा को नयी दृष्टि से देखना आवश्यक है, जो भारत की अखण्डता का मूल मन्त्र हो सकता है, क्योंकि भक्ति ही सभी पन्थों का मूल है ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. Jaishree Odin K. Lallā to Nūruddīn (Rishi- sufi poetry of kashmir). Delhi: Motilal Banarasidasa Publishers, 2016.
2. देव, उत्पल. शिवस्तोत्रावली. (अनु० - राजानक लक्ष्मण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, १९६४.
3. अभिनवस्तोत्रावलीः (सम्पा० – शशिशेखर चतुर्वेदी) वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, २०११.
4. *लल्द्यद्* (अनु० - शिबनकृष्ण रैणा). लखनऊ : भुवन वाणी ट्रस्ट, १९७७.
5. शैवाद्वयविंशतिका (सम्पा० - जनार्दन पाण्डेय). नई दिल्ली : श्रीलालबहादुरशास्त्रिराष्ट्रियसस्कृत विद्यापीठम् (मानितविश्वविद्यालयः), १९९७.
6. शङ्कराचार्य. विवेकचूडामणि (अनु० - मुनिलाल). गोरखपुर : गीताप्रेस प्रकाशन, सं० २०७३.
7. कविराज, डॉ कविराज. तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त (अनु० - हंसकुमार तिवारी). तृतीय संस्करण, पटना : बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, २००९.
8. कविराज, डॉ कविराज. भारतीय साधना की धारा (अनु० - हंसकुमार तिवारी). तृतीय संस्करण. पटना : बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्. २००७.
9. *वाचस्पत्यम्* (*षट्भागाः*). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, १९६९
10. *हलायुधकोश*., हलायुधभट्टः, (सम्पा० – जयशङ्करजोशी). लखनऊ : हिन्दीसमितिः, १९८७.